स्वाधीनता सेनानी तथा समाजवादी चिन्तक

डॉ. राम मनोहर लोहिया

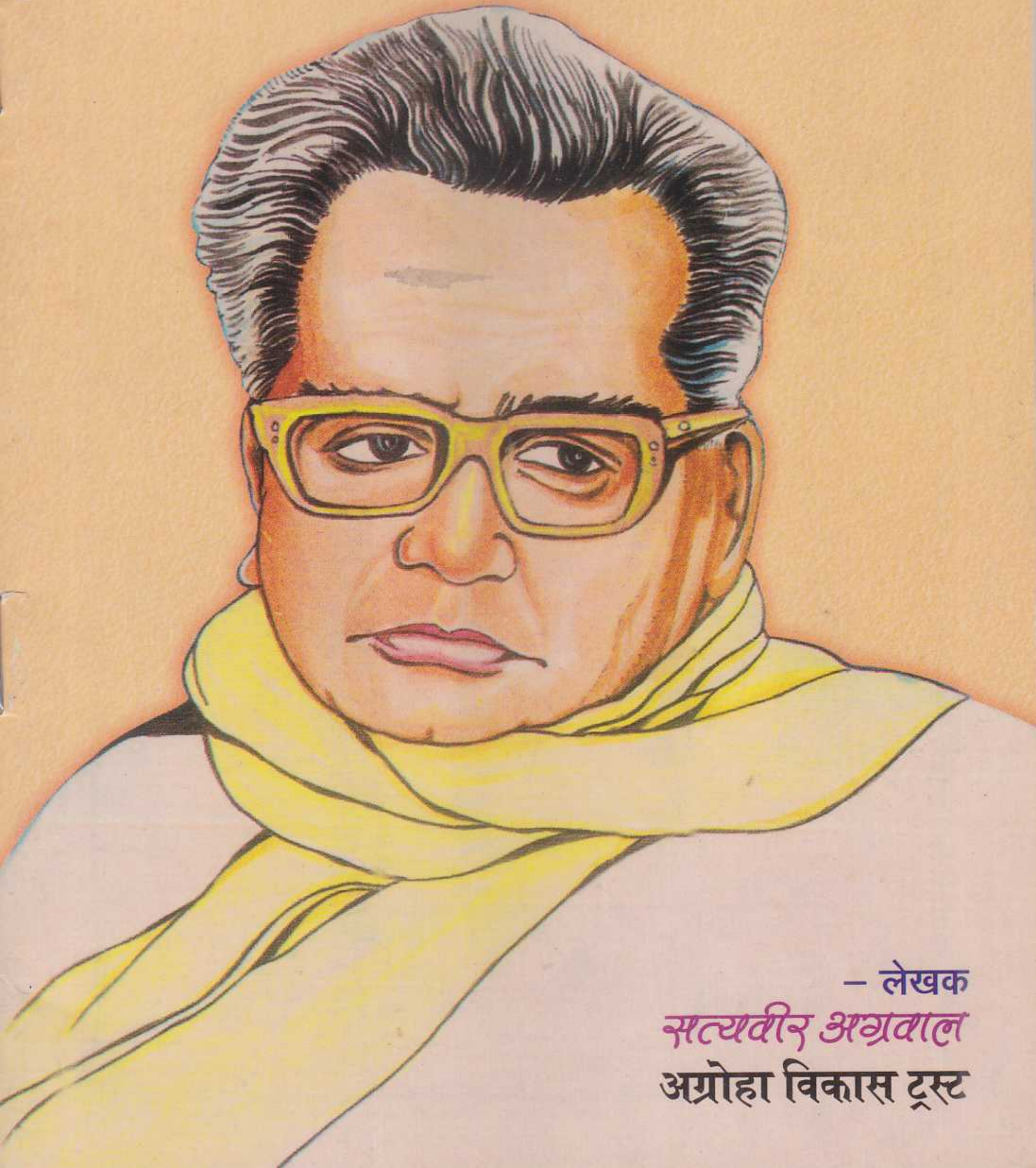

– लेखक

सत्यवीर अग्रवाल

अग्रोहा विकास ट्रस्ट

स्वाधीनता सेनानी तथा समाजवादी चिन्तक

डॉ. राम मनोहर लोहिया

: लेखक :

सत्यवीर अग्रवाल

प्रकाशक:

अग्रोहा विकास ट्रस्ट

अग्रोहाधाम, अग्रोहा-125047 (हरियाणा)

प्रकाशकः

अग्रोहा विकास ट्रस्ट

अग्रोहाधाम, अग्रोहा–125047

फोनः 01669–281127

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण – 1997

द्वितीय संस्करण – 2005

मूल्य – 15/– रु.

साज–सज्जा

सिटी कम्प्यूटर

श्रीगंगानगर–335 001

फोनः 94140–88095

डॉ. राममनोहर लोहिया देश के महान स्वाधीनता सेनानी तथा भारतीय समाजवादी चिन्तन के महान प्रवर्त्तक थे। अग्रवाल समाज में जन्मे डॉ. लोहिया का जीवन भारत ही नहीं अपितु संसार भर के असंख्य लोगों विशेषकर बुद्धिजीवियों को समय–समय पर प्रेरित करता रहा है। उन्होंने भारत की स्वाधीनता के लिए जिस प्रकार भूमिगत रहकर तथा यातनाएं सहन कर संघर्ष किया वह स्वाधीनता संग्राम के इतिहास का स्वर्णिम पृष्ठ बन चुका हैं।

डॉ. राममनोहर लोहिया का जन्म 23 मार्च, 1910 को उत्तर प्रदेश के फैजाबाद जिले के अन्तर्गत अकबरपुर तहसील में एक अग्रवाल मारवाड़ी परिवार में हुआ था। उनके पिता श्री हीरालाल लोहिया गांधीजी के परम् भक्तों में से थे और निरन्तर उनके आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेते थे। वे व्यवसायी तो थे, पर कोई भी व्यवसाय व्यस्थित रूप से नहीं चला पाते थे क्योंकि हमेशा गांधीजी के आन्दोलन से जुड़े रहने के कारण व्यवसाय की ओर ध्यान ही नहीं दे पाते थे। अपने इसी राष्ट्र–प्रेम के कारण वह कभी एक जगह स्थिर होकर रह भी नहीं सके। कोई व्यवसाय कहीं जमाया कि इसी बीच जेल चले गये। फिर छूटे तो जो काम शुरू था, वह सबका सब अस्त–व्यस्त और खत्म हो गया। नतीजा था कि कभी मुम्बई तो कभी कलकत्ता, कभी अकबरपुर में ही रहकर कुछ थोड़ा बहुत व्यापार कर लेते थे। किसी तरह कठिनाइयों के बीच जैसे जीने की उनकी आदत ही पड़ गई थी।

डॉ. लोहिया की माता का नाम चन्द्री देवी था। वह लगभग ढाई वर्ष के थे कि माता का स्वर्गवास हो गया। उनका पालन पोषण उनकी दादी ने किया। प्रारम्भिक शिक्षा अकबरपुर के प्राइमरी स्कूल में मिली। बचपन से ही अपने पिताजी के साथ ही रहे और उनके जीवन से ही उन्हें राष्ट्र–प्रेम की प्रेरणा मिली। गांधीजी से वह छोटी उम्र में ही मिल चुके थे। सन् 1918 में एक बार वह अपने पिता के साथ अहमदाबाद गये थे और गांधीजी से मिले थे। गांधीजी के व्यक्तित्व की गहरी छाप उनके मन–मानस पर पड़ी थी। उनके बचपन के दिनों में ही एक बार

जवाहरलाल नेहरू अकबरपुर आये थे तो हीरालालजी के यहां ही ठहरे थे।

डॉ. लोहिया से जवाहरलाल की पहली भेंट वहीं हुई थी। कभी–कभी वह बताते थे कि उनको उस समय बड़ी हंसी आयी थी जब स्नान करने के बाद जवाहरलालजी ने आइने और कंघी की फरमाइश की थी। अपनी उस बचपन की अवस्था में भी वह तर्क में तेज थे। उन्होंने अपने पिताश्री से पूछा था कि जब नेहरूजी के सिर पर बाल हैं ही नहीं तो यह कंघी–शीशा लेकर क्या करेंगे। पिताजी ने उन्हें जो कुछ भी समझाया हो पर नेहरूजी की यह पहली छाप थी जो डॉ. लोहिया के मन पर पड़ी थी। बाद में जब वह राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने लगे तब जवाहरलाल नेहरू से काफी प्रभावित हुए।

शिक्षा

अकबरपुर में प्राथमिक पढ़ाई खत्म करने के बाद वह अपने पिता के साथ मुम्बई चले गये। सन् 1920 में मारवाड़ी विद्यालय मुम्बई से उन्होंने मैट्रिक परीक्षा पास की। इण्टर की परीक्षा उन्होंने वाराणासी में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से दी। यहां वह तृतीय श्रेणी में पास हुए। उन दिनों इतिहास का प्रश्न पत्र 150 अंकों का होता था। 100 अंक के प्रश्न तो ब्रिटिश इतिहास के होते थे और केवल 50 अंक भारतीय इतिहास के। डॉ. लोहिया ने भारतीय इतिहास के प्रश्नों को तो काफी मन लगाकर हल किया, लेकिन रूचि न होने के कारण ब्रिटिश इतिहास के प्रश्नों पर ध्यान नहीं दिया। नतीजा था कि इतने कम अंक उन्हें मिले कि उच्च श्रेणी न पा सके। इण्टर में उन्हें तीसरी श्रेणी ही मिली, जबकि मैट्रिक वह प्रथम श्रेणी से पास हुए थे।

वाराणसी भी उनसे छूट गया। सन् 1925 में वह अपने पिता के साथ कलकत्ता आ गये। यहां पर उन्होंने विद्यासागर कालेज में नाम लिखाया और सन् 1929 में बी.ए. आनर्स की डिग्री परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। यहीं डॉ. लोहिया की मित्रता प्रख्यात साहित्यकार श्री बालकृष्ण गुप्त से हुई। वह बताते थे कि बी.ए. में ही डॉ. लोहिया ने एक लेख लिखा था 'इनडिफेन्स आफ ब्रूटस्' । 'ब्रूटस्' शेक्सपियर के जूलियस सीजर नाटक का बड़ा प्रसिद्ध खलनायक है। जिस समय जूलियस सीजर की हत्या हुई और उस पर सैनिक वार कर रहे थे तो ब्रूटस् ने भी अन्त में पीछे से छूरा भौंका था! सीजर ने कहा था– 'इविन यू टू

ब्रूटस्।' उस प्रभावशाली लेख से डॉ. लोहिया ने कालेज में अपनी विद्वत्ता की धाक जमा ली थी। इतिहास की इसी पकड़ के आधार पर उन्होंने लिखा था 'यह कैसी विडम्बना है कि मानसिंह जैसे मुगल परस्त व्यक्ति को लोग उसके जीवनकाल में पूजते हैं और महाराणा प्रताप जैसे चरित्रवान और दृढ़–प्रतिज्ञ की पूजा उसके मरने के बाद होती है।' डॉ. लोहिया की इस उक्ति से पहले तो लोग चौंकते थे पर जब गहराई से सोचते थे तो उनके इस कथन में निहित भारतीय चरित्र की कृत्रिमता सहज ही में समझ में आ जाती थी। मानसिंह को हृदय से पथ–भ्रष्ट मानने वाले लोग उसके वैभव और शक्ति के आंतक में आकर उसे मुंह पर ठकुर–सुहाती करते थे और पीछे भी निन्दा करने का साहस नहीं करते थे। उसी दौरान महाराणा प्रताप अपने बच्चों को घास की रोटी खिलाकर जीवन निर्वाह कर रहे थे। राणा प्रताप जीवन भर उपेक्षित रहे। अपने जीवन काल में उन्हें कोई भी उनकी खुलकर प्रशंसा करने वाला नहीं मिला। पर उनके दिवंगत होने के बाद उनकी भूरि–भूरि प्रशंसा होने लगी। जीवनकाल में नाम भी न लेना और मरने का प्रशस्ति गाना, यह भारतीय चरित्र की विडम्बना है। भारतीय जन–मानस की यह कमजोरी डॉ. लोहिया को आजीवन खटकती रही। उन्हें लगता था कि भारतीय मन इतना दब्बू क्यों हो गया। डॉ. लोहिया मानते थे कि यह प्रवृत्ति मानसिक गुलामी का प्रतीक है। वह इसे निन्दनीय मानते थे। उनको भारतीय चरित्र का यह रूप सदैव खटकता था।

सन् 1928–29 में बी.ए. में पढ़ने के साथ–साथ डॉ. लोहिया भारतीय राजनीति में भी सक्रिय भाग लेने लगे थे। वह 'अखिल भारतीय विद्यार्थी संगठन' के सक्रिय कार्यकर्त्ता के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। सन् 1928 में भारत में अंग्रेजी शासन ने साइमन कमीशन भेजा। उसका उद्देश्य इस बात की जांच करना था कि क्या भारत में ऐसा वातावरण है कि वहां एक स्वायत्त शासन चल सके। कांग्रेस को ब्रिटिश पार्लियामेन्ट की यह नीति गलत लगी। पूरे देश में 'साइमन कमीशन' के विरोध में बड़ी तेजी से आन्दोलन चल पड़ा। डॉ. लोहिया ने इस आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। संगठन, प्रदर्शन आदि सभी क्षेत्रों में उनका बड़ा सहयोग रहा। साइमन कमीशन के विरोध में लोहिया पकड़े तो नहीं गये पर कलकत्ता के कांग्रेस जनों में उनकी यह पहचान बन गई। विद्यार्थियों और युवा जनों में वे अग्रणी तो हो ही गये थे, बंगाली विद्यार्थियों में भी वे बहुत

लोकप्रिय हो गये। इसी सक्रियता के कारण अखिल बंग विद्यार्थी संगठन में भी वह बहुत लोकप्रिय हो गये। इसी लोकप्रियता के कारण वे बंग विद्यार्थी संगठन के एक अग्रणी कार्यकर्त्ता माने जाने लगे।

सन् 1928 में अखिल बंग विद्यार्थी संगठन का वार्षिक आयोजन था। प. जवाहरलाल नेहरू उस सम्मेलन के अध्यक्ष चुने गये थे। सुभाष बाबू विषय समिति के अध्यक्ष थे। इस सम्मेलन में लोहियाजी ने इतना ओजस्वी भाषण दिया कि तमाम बंगाली विद्यार्थी उनके भक्त हो गये। स्वयं जवाहरलाल नेहरू लोहिया के भाषण से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने डॉ. लोहिया की पीठ थपथपाई। लोहिया भी जवाहरलाल नेहरू के प्रखर व्यक्तित्व से बहुत आकर्षित हुए। लोहिया और नेहरू की यह दूसरी भेंट थी। पहली भेंट अकबरपुर में हुई थी और दूसरी यह थी।

उच्च शिक्षा के लिए विदेश प्रस्थान

सन् 1929 में बी.ए. की परीक्षा पास करने के बाद लोहिया के सामने प्रश्न था कि वह आगे क्या करें। उनके मित्रों की राय थी कि वह इंग्लैण्ड जाकर किसी विषय का विशेष रूप से अध्ययन करें। किन्तु डॉ. लोहिया के पिता श्री हीरालाल के पास इतने साधन कहां थे। उनके मित्रों ने कुछ मारवाड़ी ट्रस्टों से आर्थिक सहायता तो दिला दी, लेकिन लोहिया इंग्लैण्ड में जाकर पढ़ना नहीं चाहते थे। उन्हें अंग्रेजी वेश–भूषा से गुलामी की बू आती थी। अंग्रेजी पहनावा उन्हें कतई पसंद नहीं था। उन्होंने उसे कभी स्वीकारा ही नहीं। टाई पहनना उन्हें नहीं आता था। मित्रों के लाख सिखाने पर भी वह टाई का नाट नहीं लगा पाते थे। किसी तरह उन्हें अंग्रेजी वस्त्र पहनना, टाई लगाना सिखाया गयां वह इंग्लैण्ड गये लेकिन वहां उनका मन नहीं लगा। थोड़े ही दिनों बाद लोहिया ने अपने मित्रों को पत्र में लिखा– 'हिन्दुस्तानियों के साथ कुत्तों जैसा व्यवहार होता है। मैं यहां एक दिन भी नहीं ठहर सकता।' मित्रों ने बहुत समझाया पर वे नहीं माने। किसी प्रकार लोहिया इंग्लैण्ड में कुछ महीने और रहे। अन्त में उन्होंने फैसला लिया कि वह इंग्लैण्ड में नहीं, जर्मनी में पढेंगे।

सन् 1929–30 में जर्मनी की हालत बहुत खराब थी। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी का पूरा आर्थिक तंत्र ढह चुका था। बाजार की मंदी और आर्थिक अनिश्चितता के कारण जर्मनी में बहुत बड़े पैमाने पर

बेरोजगारी फैल गयी थी। वहां की विभिन्न राजनीतिक पार्टियां खुले आम एक–दूसरे से लड़–झगड़ रही थीं। शांति का कोई विकल्प नहीं दिखता था। संकट दिन पर दिन गहराता ही जाता था। लोग हिटलर की बातों को बहुत ध्यान से सुनते थे। धीरे–धीरे उसका प्रभाव काफी बढ़ने लगा।

डॉ. लोहिया जब जर्मनी पहुंचे तो अपने शोध निर्देशक प्रो. बर्नर जोम्बर्ट से मिले। लोहिया तब तक जर्मन भाषा में केवल अभिवादन, नमस्कार ही करना जानते थे। प्रो. जोम्बर्ट से उन्होंने अंग्रेजी भाषा में बात करनी चाही थी। प्रो. जोम्बर्ट ने उनसे स्पष्ट शब्दों में कहा कि 'वह अंग्रेजी नहीं जानते, इसलिए उनके साथ शोध कार्य नहीं हो पायेगा' प्रो. जोम्बर्ट की बात सुनकर डॉ. लोहिया ने उनसे तीन महीने का समय मांगा। वे जर्मन भाषा के अध्ययन में लग गये। तीन महीने में उन्होंने जर्मन भाषा का ज्ञान व्याकरण आदि सब सीख लिया। फिर प्रो. बर्नर जोम्बर्ट से मिले। उनसे उन्होंने जर्मन भाषा में ही बातचीत की, और जर्मन भाषा में ही शोध कराने की प्रार्थना की। प्रो. जोम्बर्ट लोहिया की भाषा और अभिव्यक्ति से बड़े प्रभावित हुए। वह आश्चर्यचकित थे कि इस भारतीय युवक ने इतनी जल्दी जर्मन भाषा सीख कैसे ली। डॉ. लोहिया ने प्रो. जोम्बर्ट से प्रार्थना की कि अब तो वे उन्हें अपना छात्र बना लें। डॉ. जोम्बर्ट ने स्वीकृति दे दी। डॉ. लोहिया ने विधिवत् दाखिला ले लिया। उन दिनों भारत में गांधीजी के नेतृत्त्व में नमक सत्याग्रह चल रहा था। इसकी चर्चा विदेशों में बड़ी तेज थी। लोगों की समझ में नहीं आ रहा था कि यह नमक आन्दोलन क्या है? नमक और राजनीति का क्या सम्बंध है। भारत का नमक सत्याग्रह जर्मनी की राजनीतिक पार्टियों में भी चर्चा का विषय बन गया। जर्मन लोगों में नमक सत्याग्रह से एक चेतना जागी। सभी पार्टिया गांधीजी के इस अनूठे प्रयोग की चर्चा करतीं। इसी चर्चा के तहत प्रो. जोम्बर्ट ने डॉ. लोहिया से 'नमक सत्याग्रह' पर शोध करने के लिए कहा। डॉ. जोम्बर्ट यूरोप के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री थे। उनकी भी उत्सुकता नमक सत्याग्रह के प्रति विशेष रूप से थी। सन् 1932 के आरम्भ में डॉ. लोहिया ने नमक सत्याग्रह पर जर्मन भाषा में अपनी थीसिस लिख डाली। डॉ. जोम्बर्ट को डॉ. लोहिया का शोध प्रबंध बहुत पसन्द आया। उनके परीक्षक प्रोफेसरों ने डॉ. लोहिया का शोध प्रबंध पढ़ा। सबने उसे उत्कुष्ट घोषित किया और इस प्रकार सन् 1932 के अन्त में राममनोहर लोहिया को 'डाक्टरेट' की उपधि मिल गई।

जर्मनी में सक्रियता

सन् 1929 से 1933 तक डॉ. लोहिया जर्मनी में रहे। नेशनल डेमोक्रेटिक पार्टी कैसे धीरे–धीरे नाजी पार्टी में बदली, कैसे अन्य राजनैतिक पार्टियां अपने ही अन्तर्विरोध के कारण नष्ट हुई, यह सारा का सारा उतार चढ़ाव डॉ. लोहिया ने जर्मनी में स्वयं अपनी आंखों से ही देखा। इन सारी घटनाओं के बीच लोहिया वहां खामोश नहीं बैठे थे। वहां भी उन्होंने अपनी राजनैतिक गतिविधियां काफी तेज कर रखी थीं। वहां उन्होंने 'मध्य यूरोपीय संघ' के नाम से एक संगठन का गठन किया। गांधी–इरविन–पैक्ट के समय इस संगठन के माध्यम से भारत के सम्बंध में डॉ. लोहिया ने काफी प्रचार का काम किया। उन्हीं दिनों कांग्रेस का कराची अधिवेशन भी होने जा रहा था। इस संस्था के माध्यम से उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित करवाये। उन्होंने मध्य यूरोपीय संगठन की ओर से जो प्रस्ताव पारित करवाकर कराची में अधिवेशन में भेजा, वह काफी महत्त्वपूर्ण है। उसमें कहा गया था– 'अपने सम्पूर्ण स्वतंत्रता के ध्येय को हमेशा याद रखते हुए ही कराची अधिवेशन अपना काम काज करे और अपने उद्देश्यों के खिलाफ काम न करे। डॉ. लोहिया के इस प्रस्ताव से जवाहरलाल जी तो बहुत ज्यादा प्रभावित थे। वह इस प्रतीक्षा में थे कि डॉ. लोहिया शीघ्र भारत आकर कांग्रेस के आन्दोलन में सक्रिय भाग लें।

सन् 1930 में जेनेवा में 'लीग आफ नेशन्स' की बैठक हो रही थी। हिन्दुस्तान की अंग्रेजी सरकार के प्रतिनिधि बीकानेर के महाराजा थे। डॉ. लोहिया ने ठान ली थी कि वह 'लीग ऑफ नेशन्स' की इस बैठक में प्रदर्शन करेंगे। लेकिन ऐसा होना संभव नहीं था। लीग आफ नेशन्स की गैलरी में प्रवेश के लिए प्रवेश पत्र होना जरूरी था। लोहिया ने किसी तरह कुछ प्रवेश–पत्र प्राप्त कर लिए। वे अपने दो मित्रों के साथ हाल की गैलरी में जा बैठे। जब महाराजा बीकानेर ने खड़े होकर अंग्रेजी में भाषण शुरू किया तो लोहिया ने गैलरी में बैठे–बैठे इतने जोर की सीटी बजाई की सारा हाल सन्नाटे में आ गया। सभा अध्यक्ष ने देखा कि यह सीटी कोई भारतीय बजा रहा है और अपने इस व्यवहार से महाराजा बीकानेर को अपमानित करना चाहता है। उसने डॉ. लोहिया और उनके साथियों को हाल से बाहर निकाल देने की आज्ञा दी। तीनों भारतीय हाल से बाहर निकाल दिये गये।

दूसरे दिन लोहिया ने अपने इस कार्य के बारे में अपना स्पष्टीकरण लिखकर जेनेवा के सारे अखबारों में छापने के लिए दिया। बयान में भारत की स्थिति का तथ्यपरक वर्णन था। उसमें 23 मार्च 1930 को भारतीय क्रांतिकारी भगतसिंह को दी जाने वाली फांसी की चर्चा की। उनका बयान केवल एक अखबार 'लू त्रावे ह्यूमेनाइट' ने छापा। लोहिया ने उस छपे बयान की प्रतियों को काफी संख्या में खरीद लिया। उसे हाल के बाहर खड़े होकर सारे प्रतिनिधियों के बीच बांटा। अपने बयान में लोहिया ने भारत के प्रतिनिधि महाराज बीकानेर को भी चुनौती दी थी। उसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि महाराजा बीकानेर भारत के प्रतिनिधि नहीं, अंग्रेजों के प्रतिनिधि हैं। उनके बयान में भारत में अंग्रेजों द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों का विस्तार के साथ वर्णन था। भारत में फैली अशान्ति का वर्णन था। इस वक्तव्य के माध्यम से उन्होंने सारे प्रतिनिधियों को भारत की सही स्थिति के बारे में जानकारी दिला दी। साथ–साथ महाराजा बीकानेर को भी अपनी वास्तविक हैसियत का ज्ञान करा दिया।

डॉ. लोहिया में प्रारम्भ से ही अदम्य साहस और निर्भीकता थी। विद्यार्थी जीवन में मुम्बई के मारवाड़ी महाविद्यालय में महान राष्ट्रभक्त लोकमान्य तिलक के निधन पर स्कूल बंद करवाने में उन्होंने अपनी छोटी आयु में जो साहस दर्शाया था उससे उनके गुरूजन भी प्रभावित थे। वही साहस अखिल भारतीय बंग विद्यार्थी संघ के सदस्य के रूप में उन्होंने कलकत्ता में भी दिखाया था। उनके उसी साहस का रूप जेनेवा के सभागार में भी प्रकट हुआ।

जर्मनी में रहते हुए लोहिया ने भारत के स्वाधीनता आंदोलन का, गांधीजी का व सत्य और अहिंसा का काफी प्रचार किया। अपने चिन्तन के कारण लोहिया जर्मनी के कम्युनिस्टों और नाजियों दोनों के बीच लोकप्रिय थे। दोनों ने बारी–बारी से लोहिया को अपनी पार्टी का सदस्य बनाना चाहा, लेकिन लोहिया ने उल्टे उनसे ही मध्य यूरोपीय संगठन का सदस्य बनने का आग्रह किया नाजियों के बीच जब लोहिया ने उनके सिद्धान्तों की आलोचना की तो पहले नाजी बहुत खीझे, लेकिन फिर उनके तर्कों की सच्चाई उन्होंने स्वीकार की। लोहिया ने जर्मनी में हिटलर के भी कई भाषण सुने थे। उस समय कम्युनिस्ट पार्टी और नाजी पार्टी के अतिरिक्त सोशल डेमोक्रेटिक नाम की भी एक पार्टी जर्मनी में

थी। लोहिया इन तीनों पार्टियों में आते जाते थे। पर जब कभी सदस्यता की बात आती तो साफ इन्कार कर देते थे। नाजियों को तो वह नार्डिक जाति की प्रमुखता के आधार पर अस्वीकार करते थे। वह कम्युनिस्टों से भी सहमत नहीं थे। उनके मित्र दोनों ही दलों में थे। केवल दो घटनाओं की चर्चा कर देने से ही पता लग जायेगा कि लोहिया इन दोनों के कितने निकट थे।

कम्युनिस्टों की एक सभा बर्लिन के 'स्पोर्ट पैलेस' में हो रही थी। इस पैलेस में चालीस हजार व्यक्तियों के बैठने की जगह थी। लोहिया जब वहां पहुंचे तो हाल भर चुका था और बाहर तैनात पुलिस ने प्रवेश पर रोक लगा दी थी। लोहिया ने पुलिस को अपना प्रवेश–पत्र दिखाया तो आफिसर ने कहा कि हाल में जगह नहीं है, आप हाल में नहीं जा सकते। इधर यह बहस हो रही थी कि उधर समारोह के संयोजकों ने लोहिया को देखा। वह खुद बाहर आये और बड़े प्रेम और सद्भाव के साथ उन्हें अपने साथ हाल में विशेष अतिथि के रूप में ले गये।

अन्याय का प्रतिकार

इसी प्रकार की एक घटना नात्सी (नाजी) पार्टी वालों की एक सभा के दौरान हुई। यह सभा जर्मनी के टैनिस हाल में हो रही थी जिसमें लगभग चालीस हजार श्रोता इकट्ठा हुए थे। इसमें भी लोहिया हाल के भीतर नहीं जा पा रहे थे। हिटलकर का भाषण शुरू होने ही वाला था और लोहिया टैनिस हाल के प्रवेश द्वार पर खड़े गेट कीपरों से झगड़ रहे थे। खुफिया पुलिस वालों को उन पर संदेह हुआ। वह उनसे पूछताछ करने लगे। लोहिया उनको अपना परिचय दे ही रहे थे कि सहसा नीत्शे पार्टी के वरिष्ठ नेता परीले शेल्कर की दृष्टि लोहिया पर पड़ी। वह स्वयं आगे बढ़कर आये और लोहिया को पंडाल के भीतर ले गये। खुफिया पुलिस वालों ने जब परीले शुल्कर से पूछा तो उन्होंने बताया कि लोहिया उनके विदेशी पत्र के प्रतिनिधि हैं। लोहिया ने इसी कार्यक्रम में हिटलर का धारा प्रवाह भाषण सुना। परीले शेल्कर को लगा कि लोहिया हिटलर के भाषण से बहुत प्रभावित हैं। लेकिन जब उन्होंने लोहिया से भारत में नाजीवाद के प्रचार की संभावना पर बात की तो लोहिया ने दो टूक शब्दों में कहा कि तुम्हारा सोचने का तरीका तो आदमी को जाति में बांटना तथा वंश की श्रेष्ठता को प्रमुख बनाना है।

इसलिए तुम कभी मानव मात्र, विश्वमानव या विश्वबन्धुत्व की बात सोच ही नहीं सकते। तुम लोग अपने को नस्ल के आधार पर सर्वश्रेष्ठ मानते हो और हिन्दुस्तान और काले रंग वाले लोगों को निकृष्टतम मानते हो। आदमी–आदमी के बीच यह बंटवारा भारतीय चिन्तन के विपरीत है। उन्होंने कहा कि हम भारतीय तो 'विश्वबन्धुत्व' में विश्वास करने वाले हैं। हमारा तुम्हारा साथ नहीं हो सकता। नीत्शे दर्शन को स्वीकार करना भारत के आत्म सम्मान के विपरीत है। कहते हैं कि डॉ. लोहिया की स्पष्ट बात से परीले बड़ा प्रसन्न हुआ। डॉ. लोहिया को कट्टर राष्ट्र स्वाभिमानी समझकर वह उनसे हमेशा बड़ा स्नेह दिखाता रहा।

ऐसी ही एक घटना का वर्णन डॉ. साहब ने अपने संस्मरणों में किया था जब गुमनाम शहीदों के स्मारक पर फूल मालाएं चढ़ायी जा रही थीं। उस अवसर पर नेशनल सोशलिस्ट पार्टी अर्थात् नात्सी पार्टी वालों ने भी मालाएं चढ़ायीं। कोई फौजी या नेवी का अफसर जब मालाएं चढ़ाने आया तो उससे नात्सी पार्टी की मालाएं छांट–छांटकर निकाल फेंकी। इस पर बड़ा विरोध हुआ। लोहिया भी उस विरोध में खड़े थे। लोहिया को विरोध में खड़े हुए देखकर किसी नात्सी पार्टी वाले ने लोहिया को उस विरोधी जगह से हट जाने के लिए कहा। लोहिया ने उसे बहुत कड़ा जवाब देते हुए कहा– 'अन्याय के विरूद्ध खड़े होने का अधिकार सबको है चाहे वह तुम्हारी पार्टी का सदस्य हो या न हो। रही यहां खड़े होने की बात तो यह जमीन तुम्हारी नहीं है। जितनी जमीन पर मैं खड़ा हूं वह मेरी है। मैं यहीं खड़ा रहूंगा।' बात किसी बड़े नीत्शे नेता तक पहुंची। वह खुद आया और आकर उसनै लोहिया से नाजी पार्टी की तरफ से क्षमा मांगी। लोहिया ने कहा– "मैं तुम्हारी पार्टी का सदस्य नहीं हूं किन्तु तुम्हारे साथ अन्याय हुआ है इसलिए उस अन्याय के विरोध में मैं यहां खड़ा हूं।" लोहिया के साहस, चरित्र एवं संघर्षशील व्यक्तित्व से वह नात्सी नेता बड़ा प्रभावित हुआ। उसने लोहिया को खुद आदर और सम्मान दिया।

अन्याय के प्रति अकेले खड़े होने का साहस लोहिया में बचपन से ही था। जब वे बालक थे और अकबरपुर के छोटे से मदरसे में पढ़ते थे तब भी उनमें यह अभूतपूर्व साहस था। एक दिन जब वह अपने स्कूल पढ़ने जा रहे थे तो उन्होंने देखा कि रास्ते में एक काफी बड़ी आयु वाला व्यक्ति एक छोटे से बच्चे को बड़ी बेरहमी के साथ पीट रहा था। लोहिया

से यह बर्दाश्त नहीं हुआ। उन्होंने अपने से दूने–तिगुने उम्र वाले का हाथ पकड़ लिया। उस व्यक्ति को बच्चे को पीटना बंद करना पड़ा। बाद में लोगों ने लोहिया से पूछा– 'वह अपराधी संस्कारों वाला आदमी तुम्हें पीटना शुरू कर देता तो तुम क्या करते।' लोहिया ने कहा– –'तब की तब देखी जाती। उस समय तो उसको रोकना ही जरूरी था।'

जहां तक नैतिक चरित्र का प्रश्न है वह भी लोहिया में बहुत ही दृढ़ था। एक बार जर्मनी में अपने कुछ साथियों के साथ मोटर ड्राइव करके वे किसी गांव की तरफ जा रहे थे। रास्ते में एक गांव वाले की गाड़ी से उनकी गाड़ी टकरा गयी। लोहिया ने इस दुर्घटना के लिए उस ग्रामीण जर्मन से क्षमा मांगी लेकिन उस गांव वाले ने उनकी बात अनसुनी कर दी। बोला– मैं तुम्हें पुलिस को दूंगा। वह यह कहकर जब पुलिस को बुलाने ज़ाने लगा तो लोहिया से बोला– 'भागना नहीं यहीं खड़े रहना।' लोहिया ने कहा तुम पुलिस बुला लाओ। मैं यहां आधे घन्टे तक खड़ा रहूंगा। गांव वाला चला गया तो लोहिया के दोस्तों ने कहा चलो यहां से भाग चलें। लोहिया ने मित्रों की बात नहीं मानीं और वह आधे घन्टे तक वहीं खड़े रहे। जब आधे घन्टे का भी समय बीत गया तो मित्रों ने कहा अब तो चलो। लोहिया ने कहा– मैं पांच मिनट और रूकुंगा। पांच मिनट बाद वह ग्रामीण खाली हाथ आया। उसके साथ पुलिस वाला नहीं था। पहुंचते ही वह ग्रामीण बोला– 'तुम गये नहीं। मैं सोचता था कि तुम अब तक भाग गये होंगे।' लोहिया ने कहा– 'मैंने तुम्हें आधे घन्टे का समय दिया था। फिर मेरे भागने का सवाल कहां आता था?' वह गांव वाला लोहिया को चकित दृष्टि से काफी देर तक घूरता रहा। जैसे कह रहा हो कि तुम कैसे आदमी हो। कोई दूसरा होता तो भाग गया होता। फिर बोला– अजीब हालत है– पुलिस वाले रपट भी नहीं लिखते। लोहिया ने कहा– तुम्हारे ही देश की पुलिस ऐसी नहीं है। हर जगह की पुलिस ऐसी ही होती है। गांव वाला लोहिया की बात से बड़ा प्रसन्न हुआ। बोला– तुम जाओ। तुमसे मुझे कोई शिकायत नहीं है।

लोहिया में जहां अन्याय के खिलाफ विरोध करने का अदम्य साहस था वहीं अपनी गलतियों का अहसास होने पर क्षमा मांगने में भी उन्हें तनिक संकोच नहीं होता था। बहुत से लोग डॉ. लोहिया को बड़ा जिद्दी व्यक्ति मानते थे। लेकिन डॉ. लोहिया जिद्दी नहीं थे वह हर प्रकार के अन्याय के विरूद्ध संघर्ष करने वाले तेजस्वी व्यक्ति अवश्य थे।

अमरीका में रंगभेद के विरूद्ध संघर्ष

अमरीका में उन्होंने रंग–भेद की विरूद्ध संघर्ष किया। एक ऐसे होटल में जहां काले लोगों का प्रवेश निषिद्ध था, डॉ. लोहिया ने कुछ मित्रों के साथ प्रवेश किया। होटल के मैनेजर से उन्होंने कहा कि 'मैं इस अमानुषिक कानून को जानबूझकर और पूरे होशोहवास में तोड़ रहा हूं।' पुलिस ने उन्हें बंदी बना लिया। बाद में वह छोड़ दिये गये। कुछ लोगों ने उस समय कहा भी था कि डॉ. लोहिया हमेशा सुर्खियों में रहने के लिए यह सब करते हैं। उनके इस तरह कानून तोड़ने से क्या रंग–भेद दूर हो जायेगा। किन्तु इस तरह उनकी निन्दा करने वाले यह नहीं समझ पाये कि अन्याय का विरोध हमेशा जीतने के लिए नहीं किया जाता। कभी–कभी हारने के लिए भी अन्याय के विरूद्ध लड़ाई लड़ी जाती है। मूल्य हार–जीत का नहीं है मूल्य है, उस नैतिक शक्ति का जो उस अन्याय के खिलाफ आवाज लगाकर उस क्षण के यथार्थ को बेनकाब करने की क्षमता प्रदान करती है।

जहां तक नैतिकता को आचरण में लाने की बात है उसकी भी एक अद्वितीय घटना है। डॉ. लोहिया की थीसिस को दो जर्मन प्रोफेसरों ने जांचा था। दोनों ने अलग–अलग साक्षात्कार लिए। प्रो. शुमाखर ने उनसे लम्बा साक्षात्कार किया और उसके बाद निर्णय एक लिफाफे में लिखकर देते हुए बोले कि तुम इसे अपने दूसरे परीक्षक प्रो.देसनार को दे देना। डॉ. लोहिया ने लिफाफा ले लिया। जब वह लिफाफा देसनार को दिया, तो उन्होंने पूछा कि प्रो. शुमाखर ने तुम्हारी थीसिस के बारे में क्या लिखा है। डॉ. लोहिया ने कहा– 'मैं ऐसा असभ्य नहीं हूं कि आपके नाम दिया गया लिफाफा खोलकर खुद पढ़ लूं। प्रो. देसनार लोहिया का चेहरा देखने लगे, क्योंकि उन दिनों जर्मनी में प्रायः स भी विद्यार्थी लिफाफा खोलकर अपना नतीजा देख लेते थे। प्रो. देसनार ने लोहिया के इस चरित्र की बड़ी प्रशंसा की।

भारत वापसी

सन् 1933 में जब डॉ. लोहिया भारत आये साथ में 'डाक्टरेट' की डिग्री लेकर आये, तो लोग समझते थे कि वह किसी छोटे मोटे कालेज या यूनिवर्सिटी में प्रोफेसरी करेंगे। लेकिन लोहिया प्रोफेसरी करने के बजाय सीधे गांधीजी के पास गये। यह निर्णय उन्होंने भारत में आकर

नहीं लिया था बल्कि जर्मनी में ही प्रो. देसनार के पूछने पर कि अब तुम भारत में जाकर क्या करोगे? उन्होंने कहा था 'प्रोफेसरी तो नहीं करूंगा।' प्रो.देसनार इस दो टूक जवाब से आश्चर्य में पड़ गये थे।

इस नैतिक और साहसिक चरित्र के साथ लोहिया में संघर्ष की अदम्य क्षमता थी। जर्मनी से जब वह लौटे तो पानी के जहाज से मद्रास उतरे। वहां उनके पास किताबों के कई बण्डल थे। पैसा सब खर्च हो गया था। मद्रास से कलकत्ते जाने का किराया भी उनके पास नहीं था। लोहिया सीधे अंग्रेजी पत्रिका 'हिन्दू' के कार्यालय पहुंचे। वे सम्पादक से मिले तथा उन्हें अपनी कठिनाई बताई। उसने उनसे एक लेख लिखने के लिए कहा। डॉ. लोहिया ने वहीं उसी कार्यालय में बैठकर एक लेख लिख दिया। लेख के पारिश्रमिक के रूप में उन्हें 25 रूपये मिले तो वह अपनी किताबों के साथ कलकत्ता पहुंचे। वहां पहुंचने पर पता चला कि उनके पिता चार सौ सत्याग्रहियों के साथ प्रेसीडेन्सी जेल में कैद हैं। जवाहरलाल नेहरू नजरबंद किये जा चुके हैं। गांधीजी गोलमेज कान्फ्रेन्स से लौटते ही बंदी बना लिये गए हैं। खान अब्दुलगफ्फार खां को अंग्रेजों ने कैद करके बर्मा की जेल में भेज दिया है। देश में हर जगह धर–पकड़ हो रही है। डॉ. लोहिया को कुछ समय देश की स्थिति समझने में लगा। इसलिए वह चुपचाप देखते रहे, लोगों से चर्चा करते रहे। वे लम्बे अन्तराल के बाद भारत लौटे थे। बहुत से परिप्रेक्ष्य और संदर्भ बदले हुए थे।

इसी बीच एक और घटना घटी। डॉ. लोहिया अपने चाचा रामकुमार लोहिया से मिले। जब उनके चाचा ने उनको व्यापार करने की सलाह दी तो लोहिया ने कहा– 'व्यापार में पैसा लगता है। मेरे पास पैसा कहां है।' चाचा ने कहा कि पैसे की कमी नहीं होगी। व्यापार करना है यह तो सोचो। लोहिया ने कहा– 'मुझे भारत से अंग्रेजों को निकाल बाहर करने का व्यापार करना है। मैं यही कर सकता हूं।' चाचा लोहिया की बात से बहुत नाराज हुए। लेकिन लोहिया पर उस नाराजगी का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अपनी अत्यन्त संकटपूर्ण आर्थिक विपन्नता में भी वह झुके नहीं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि लोहिया ने अपनी आर्थिक स्थिति को ठीक करने की कोशिश नहीं की। उन्होंने एक बार हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रोफेसरी के लिए आवेदन किया। वे महामना प. मदनमोहन मालवीय जी से मिले, पर वहां अर्थशास्त्र विभाग में नियुक्तियां हो चुकी थीं अतः उन्हें निराश होना पड़ा। प्रख्यात उद्योगपति श्री बिड़लाजी ने उन्हें अपने व्यक्तिगत सचिव के रूप में रखने की

इच्छा प्रकट की। कुछ दिनों लोहिया बिड़ला जी के साथ रहे लेकिन उनकी उनसे नहीं पटी। प्रख्यात राष्ट्रभक्त जमनालाल बजाज लोहिया को बेटे की तरह मानते थे। उन्होंने भी चाहा कि लोहिया उनकी आर्थिक सहायता लेकर राष्ट्रीय आन्दोलन में कार्यरत हों, पर लोहिया ने कुछ दिनों उनके साथ रहने के बाद यह निश्चय किया कि वे वह फिर कलकत्ता चले जायेंगे। इस तरह वे सन् 1933–34 का पूरा वर्ष भटकते रहे।

1934 में कांग्रेस के सिविल नाफरमानी आन्दोलन की विफलता के कारण देश के लोगों के मन में घोर निराशा छा गयी। नासिक जेल में कुछ कांग्रेस के लोग थे जो समाजवादी विचारों से प्रभावित थे। कुछ अन्य जेलों में भी ऐसे लोग थे। जब यह लोग जेल से छूटे तो इन्होंने एक समाजवादी संगठन बनाने का संकल्प किया। 17 मई 1934 को पटना में अन्जुमने इस्लामिया हाल में इन सबकी एक बैठक हुई। आचार्य नरेन्द्रदेव ने इस बैठक की अध्यक्षता की। लोहिया और जयप्रकाश भी इस सम्मेलन में थे। समाजवादी पार्टी के संगठन के उद्देश्यों की चर्चा हो रही थी। लोगों ने संगठन का लक्ष्य समाजवादी समाज की स्थापना स्वीकार करना चाहा। लोहिया ने प्रस्ताव रखकर समाजवादी संगठन के लक्ष्य में सम्पूर्ण आजादी को भी जोड़ने की सलाह दी। अधिकांश लोग लोहिया के इस संशोधन से सहमत नहीं थे। लेकिन आचार्य नरेन्द्रदेव ने लोहिया के इस प्रस्ताव का समर्थन किया। पर बहुमत ने पूर्ण स्वतंत्रता के उद्देश्य को इसमें जोड़ना उचित नहीं समझा। लोहिया का संशोधन गिर गया। यह लोहिया की पहली राजनीतिक पराजय थी लेकिन इससे उनके साहस में किसी प्रकार की कमी नहीं आई।

कांग्रेस सो शलिस्ट पार्टी का जन्म

21 अक्टूबर को मुम्बई में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना का सम्मेलन हुआ। लोहिया समाजवादी पार्टी की कार्यकारिणी के सदस्य चुने गये। यहीं 'कांग्रेस सोशलिस्ट' नाम की एक पत्रिका कलकत्ता से निकालने का निश्चय हुआ। लोहिया उसके सम्पादक नियुक्त किये गये। इस कार्य को लोहिया ने बड़ी कठिन अग्नि–परीक्षाओं के बीच निभाया।

उनके पिता हीरालाल जी व्यापार छोड़कर गांधीजी के रचनात्मक कार्य में पूर्ण समर्पित भाव से लग गये थे। डॉ. लोहिया की आय का कोई साधन नहीं था। ऊपर से 'कांग्रेस सोशलिस्ट' पत्रिका को सम्पादित करने

और निकालने का दायित्व उन पर आ गया था। न तो उन दिनों लोहिया के पास पहनने के कपड़े थे और न सोने की जगह। खाना वह कभी किसी के यहां तो कभी किसी के यहां खा लेते थे। कुछ दिनों बाद वह कलकत्ता के मिर्जापुर सिटी मोहल्ले में किसी के साथ रहने लगे।

'कांग्रेस सोशलिस्ट' के जितने भी अंक डॉ. लोहिया ने निकाले वह समाजवादी विचारों का कीर्तिमान स्थापित करने में बड़े सहायक हुए। उनके अंको की सबने प्रशंसा की। डॉ. लोहिया ने इस समाजवादी पत्र के माध्यम से पहली बार राजनीति और संस्कृति को एक साथ जोड़ने की कोशिश की। उस पत्र में समाजवादी समाज की जो रूपरेखा डॉ. लोहिया ने प्रस्तुत की उससे पत्र की गरिमा बढ़ने लगी। पत्र तो समय पर नियम से निकलता रहा पर व्यक्तिगत स्तर पर लोहिया की फाकामस्ती में कोई कमी नहीं आई। वह उसी तरह नितान्त आर्थिक अभाव में भी पत्र निकालते रहे। उत्साह और मिशन का भाव उनमें इतना तीव्र था कि वे खुद सड़क पर, चौराहों पर खड़े होकर कांग्रेस सोशलिस्ट पत्रिका बेचते थे। यह क्रम सन् 1936 तक निर्बाध रूप से चलता रहा।

सन् 1936 में कांग्रेस का अधिवेशन लखनऊ में हुआ। जवाहरलाल नेहरू इस सम्मेलन में अध्यक्ष चुने गये। अधिवेशन में कांग्रेस में विदेश नीति सम्बंधी एक सेल बनाने का प्रस्ताव पारित हुआ। जवाहरलाल नेहरू ने डॉ. लोहिया को इस विभाग का मंत्री नियुक्त कर दिया। यहीं से लोहिया के जीवन में एक नया मोड़ शुरू हुआ। उन्हें कलकत्ता छोड़कर इलाहाबाद आना पड़ा। शायद इसी के कारण लोहिया जिस आधे आदमी को अपने राजनैतिक जीवन का महत्वपूर्ण योगदान देने वाला मानते थे वह जवाहरलाल नेहरू थे। अखिल भारतीय कमेटी के कार्यालय 'आनन्द भवन' में डॉ. लोहिया रहने लगे। कांग्रेस के विदेशी नीति के सेल में काम करते हुए उन्होंने अफ्रीका–एशियाई देशों की समस्याओं का विश्लेषण भी किया और उसे भारत की विदेश नीति का प्रमुख अंग बनाया। विदेशों के अनेक विदेशी मंत्रालयों से कांग्रेस का सीधा सम्बंध स्थापित हुआ। एक प्रकार से देखा जाए तो आजादी के बाद विदेश नीति का आधार डॉ. लोहिया का ही बनाया हुआ था। जवाहरलाल जी ने आगे चलबर उन्हीं नीतियों के आधार पर अपनी नीति बनानी चाही। पर उन नीतियों के मूल प्रवर्त्तक तो डॉ. लोहिया थे। इसलिए मूल भावना के अभाव में विदेश नीति का जो रूप सामने उभरकर आया वह सन्तोषजनक नहीं था। कांग्रेस के

विदेश विभाग के मंत्री के रूप में ही डॉ. लोहिया ने 'हिमालय-नीति' की व्याख्या की थी। रूस और अमेरिका दोनों भारतीय संदर्भ में कितने अप्रासांगिक हैं इसकी व्याख्या उन्होंने प्रस्तुत की। नेहरू शुरू में इन विचारों से बहुत प्रभावित थे। लेकिन जवाहरलाल नेहरू ने आजाद भारत के विदेश मंत्री के रूप में जो विदेश नीति प्रस्तुत की उससे लोहिया दुःखी थे। उनका कहना था कि यह अमरीका और रूस को बारी-बारी से संतुष्ट करने वाली नीति है। नेहरूजी की विदेश नीति को डॉ. लोहिया राष्ट्रीय हितों पर आधारित नहीं मानते थे। उसे वह विश्वबन्धुत्व पर आधारित भी नहीं मानते थे। उनकी दृष्टि में नेहरूजी की विदेश नीति 'विश्वयारी' वाले चुटकुलों की विदेश नीति के सिवा कुछ भी नहीं थी।

कम्युनिस्टों से मतभेद

लोहिया ने कांग्रेस दल के विदेश विभाग के मंत्री के रूप में कम्युनिस्ट पार्टी की नीतियों और रूस की नीतियों का बृहद् विश्लेषण किया था। पहले तो समाजवादी और कम्युनिस्टों में ज्यादा मतभेद नहीं था परन्तु स्टालिन ने जब रूस में वैचारिक स्वतंत्रता का हनन और लोगों को प्रताड़ित करना शुरू किया तो बहुत से कम्युनिस्टों और समाजवादियों का विश्वास रूस और मार्क्सवाद से टूटने लगा। सन् 1936 में ही यह विवाद जोरों से छिड़ गया था। न जाने कितने निर्दोष नागरिकों की रूस में हत्याएं की गयीं। इन खबरों को पढ़कर भारत में एक बड़ा वर्ग रूसी साम्यवाद के प्रति शंकालु हो गया। भारत में चूंकि कम्युनिस्ट पार्टी अभी भी भूमिगत थी इसलिए भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी की यह कोशिश थी कि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी से मिलकर मार्क्सवाद का प्रचार-प्रसार किया जाये। उन्होंने बड़ी कोशिश की कि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का विलय हो जाये। पर इस एकता के प्रस्ताव को डॉ. लोहिया ने भारतीय समाजवाद के लिए घातक माना। उन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी के इस प्रस्ताव का घोर विरोध किया। उन दिनों जयप्रकाश जी लोहियाजी से सहमत नहीं थे। लोहिया बार-बार यह कहते थे कि भारत की कम्युनिस्ट पार्टी रूस के दुमछल्ले की तरह भारत में काम करती है। उसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्त्व है ही नहीं। लोहिया की इस बात से अशोक मेहता, मीनू मसानी तथा अच्युत पटवर्धन सहमत थे। नतीजा यह हुआ कि जयप्रकाश जी से वैचारिक विरोध के कारण इन लोगों ने

समाजवादी पार्टी की कार्यकारिणी से त्यागपत्र दे दिया। यह संघर्ष लगभग दो वर्षों तक चलता रहा। सन् 1938 में कम्युनिस्ट पार्टी ने अन्तिम प्रयास किया कि समाजवादी प्रार्टी का विलय कम्युनिस्ट पार्टी में हो जाये, लेकिन कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने इसे इस बार भी स्वीकार नहीं किया। कम्युनिस्ट पार्टी अपने उद्देश्यों में सफल नहीं हो पायी। यद्यपि डॉ. लोहिया ने इस बार बड़ी कोशिश की कि वह कम्युनिस्ट, जो अब भी छद्म वेश में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में है, उन्हें निकाल दिया जाये, पर जयप्रकाश जी इसके लिए तैयार नहीं थे। वह इस पार्टी के मंत्री थे। इसलिए सन् 1938 में यह काम नहीं हो पाया।

सन् 1939 में दूसरे महायुद्ध की जब घोषणा हुई तो कम्युनिस्ट स्वतंत्रता आन्दोलन से अलग हो गये। रूस के युद्ध में शामिल होने से कम्युनिस्ट पार्टी ने अंग्रेजों की मदद करना स्वीकार कर लिया। इस स्वीकृति के तहत वह मित्र राष्ट्रों की सहायता भी करने लगे। नतीजा यह हुआ कि कम्युनिस्ट पार्टी का भूमिगत जीवन समाप्त हो गया। वैधरूप में वह अब सामने आ गई। ऐसा होने से कम्युनिस्ट पार्टी स्वतः कांग्रेस पार्टी से अलग हो गई।

इस अलगाववाद का तत्काल तो केवल यही प्रभाव पड़ा कि कई लोग कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की सदस्यता त्यागकर कम्युनिस्ट पार्टी में चले गये। बाद में कम्युनिस्टों और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में मतभेद दिन प्रतिदिन स्पष्ट रूप से सामने आने लगे।

आजादी की लड़ाई

युद्ध की घोषणा के साथ–साथ डॉ. लोहिया पूरी तरह से कांग्रेस के युद्ध विरोधी अभियान तथा भारत की आजादी की लड़ाई तेज करने के प्रचार कार्य में लग गये। 1939 में उन्होंने गांधीजी को एक पत्र लिखा और तुरन्त भारत की आजादी के संघर्ष को पूरी तत्परता से शुरू करने का आग्रह किया। गांधीजी लोहिया से सहमत नहीं हुए फिर भी लोहिया अपने विचारों से नहीं डिगे। उन्होंने युद्ध विरोधी संगठन स्थापित किया। पाक्षिक पत्र निकालने की योजना बनाई। फौजी भरती का विरोध करने के लिए जगह–जगह समितियों का गठन किया। उन्होंने जगह–जगह सभाओं में युद्ध के विरोध में आग उगलना शुरू किया। परिणामस्वरूप वह 24 मई 1939 को कलकत्ता में गिरफ्तार कर लिये गये। युद्ध के

विरुद्ध अपने को गिरफ्तार की निन्दा की गई। उन पर मुकदमा चला। डॉ. लोहिया ने अपने मुकदमें में खुद बहस की और 24 जून 1939 को मजिस्ट्रेट ने उन्हें निरपराध घोषित कर छोड़ दिया।

इस नजरबन्दी से छूटने के बाद जब लोहिया जेल से बाहर आये तो उन्होंने देखा कि जवाहलाल नेहरू इस कोशिश में हैं कि अंग्रेजों से समझौता कर लिया जाये और इस शर्त के साथ आजादी की मांग की जाये कि यदि अंग्रेज भारत को आजाद कर देंगे तो भारत युद्ध में उनकी सहायता करेगा। इस आशय का एक तार भी नेहरूजी ने तत्कालीन विश्वशाान्ति कांग्रेस को भेजा था।

डॉ. लोहिया और नेहरू जी के बीच संघर्ष

राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर नेहरू से उनके मतभेद निरन्तर बढ़ते ही गये। लोहिया और नेहरूजी के विचारों में अलगाव उस समय और प्रखर हो गया, जब 5 अक्टूबर, 1939 को लोहिया ने कहा "ब्रिटेन को सहायता देने का प्रश्न हिन्दुस्तान को आजादी मिलने के बाद ही उपस्थित हो सकता है। ब्रिटेन को युद्ध में सहयोग देने से आप ही आप आजादी मिलेगी यह भ्रम दूर होना चाहिए। युद्ध की परिस्थिति के बारे में नीति घोषित करने का अधिकार केवल कांग्रेस को है।" जवाहरलाल नेहरू को लोहिया के यह विचार नहीं रूचे। कांग्रेस कमेटी में जब इस सवाल पर विचार हुआ तो नेहरूजी का ब्रिटेन से समझौतावादी प्रस्ताव नहीं माना गया। नेहरूजी को पहली बार यह अनुभव हुआ कि डॉ. लोहिया से उनके आधिपत्य को खतरा पैदा हो सकता है।

गांधीजी और वायसराय के बीच चल रही वार्ता के भी लोहिया खिलाफ थे। वह जानते थे कि इन बातों का कोई परिणाम नहीं निकलेगा। उन्होंने नेहरूजी के उन नरम प्रस्तावों का भी विरोध किया था जिनके आधार पर कांग्रेस और गांधीजी वायसराय से बातचीत कर रहे थे। पहले तो लोहिया की बातों को गंभीरता से नहीं लिया गया परन्तु जब अंग्रेजों ने स्वयं उन प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया, तब लोहिया की बात लोगो को समझ में आई। 5 अक्टूबर को एक तरफ तो वायसराय से बात हो रही थी, दूसरी तरफ लोहिया की भविष्यवाणियां चल रही थी। लोहिया बार–बार कहते थे कि कांग्रेस को इस वार्ता के जाल से निकलकर सीधे आजादी की लड़ाई छेड़नी चाहिए। लेकिन उनकी बात

नहीं सुनी गयी। लोग लोहिया को अतिवादी कहते रहे। लेकिन अन्त में लोहिया की भविष्यवाणियां ही सही निकलीं। वायसराय और सैक्रेटरी ऑफ स्टेट दोनों ने अलग–अलग वक्तव्यों में कांग्रेस के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। फलस्वरूप कांग्रेस कमेटी को निश्चित निर्देश देना पड़ा कि जहां–जहां प्रदेश में कांग्रेसी सरकार है वह त्यागपत्र दे। 31 अक्टूबर तक सात प्रान्तों की कांग्रेस सरकारों ने त्यागपत्र दे दिये और वहां गवर्नर का शासन लागू हो गया।

उन्हीं दिनों डॉ. लोहिया ने 'शस्त्रों का नाश होगा' शीर्षक से एक लेख लिखा था जिसमें कुछ अहम सवालों पर देश का ध्यान खींचा गया था। उसमें उन्होंने लिखा था कि 'अमरीका के हवाई जहाज चीनी शहरों में बम फेंकते हैं और जर्मन गोलियों से जापानी लोग चीनियों की हत्या कर रहे हैं इसका क्या मतलब है।'

'स्पेनी प्रजातंत्र को हिटलर के मंजे हुए सैनिकों ने ध्वस्त किया था। अपने देश में बनाई हुई गोलियों और युद्ध सामग्री से उनका ध्वंस किया गया। जर्मनी ने ग्रीस को युद्ध सामग्री दी, बदले में तम्बाकू ली। अभी भी अपने देश की भूमि सेना में खिदमत करने वाले बहादुर और देशभक्त सिपाहियों की उन्हीं के देश में बनाए हुए हथियारों से हत्याएं हो रही हैं। ये सभी नृशंस हत्याएं अत्यन्त घृणास्पद हैं। राष्ट्र अपने ही नागरिकों का संहार कर रहे हैं यह कितनी व्याकुलता उत्पन्न करने वाली बात है। यह आश्चर्यजनक है कि हम और बुद्धिजीवी भारतीय शस्त्रों की आरती उतार रहे हैं। वे पागल हैं। ऐसे शस्त्रों का खात्मा हो।'

डॉ. लोहिया अकेले व्यक्ति थे जो उन दिनों गांधीजी के विचारों के अनुसार युद्ध का खुलकर विरोध कर रहे थे। गांधीजी के विचारों पर आधारित उन्होंने कई कमेटियां बनाई थीं। उनके द्वारा गठित सभी कमेटियां अपने सीमित दायरे में गांधीजी का युद्ध विरोधी कार्यक्रम चला रही थीं। उनके विचारोत्तेजक लेख देश के लाखों लोगों द्वारा तो पढ़े ही जा रहे थे साथ ही उनका लेखा–जोखा अंग्रेजी सरकार भी ले रही थी। इन सबके होते हुए लोहिया के चेहरे पर कोई शिकन नहीं थी। वह जानते थे कि उनके इन विचारों से भीतर ही भीतर जवाहरलाल नेहरू जैसे लोग कुढ़ रहे हैं लेकिन लोहिया के तेवरों में कमी नहीं आ रही थी। वह दिन पर दिन आजादी की लड़ाई का बिगुल बजा रहे थे। वह कहते थे कि इस वक्त अंग्रेजों के प्रति किसी भी प्रकार की नरमी नहीं दिखानी चाहिए।

इसी श्रृंखला में डॉ. लोहिया के विचारों से प्रभावित कुछ लोगों ने सुल्तानपुर की दोस्तपुर तहसील में एक राजनैतिक सम्मलेन 11 मई 1940 को आयोजित किया। डॉ. लोहिया इस राजनैतिक सम्मेलन के अध्यक्ष थे। अपने अध्यक्षीय भाषण में लोहिया ने कहा 'दुनियॉ की अन्य जातियों के शोषण और गुलामी पर आधारित ब्रिटिश सरकार एवं साम्राज्य की विशाल इमारत लड़खड़ा रही है। अंग्रेजों द्वारा तैयार किये गये इसके विशाल खेमे अब गिरकर इसे चकनाचूर होने से बचा नहीं सकते।' इसी सम्मेलन में डॉ. लोहिया ने देश का आह्वान करते हुए किसानों को करबन्दी, लगानबन्दी का आन्दोलन शुरू करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने सत्याग्रह और सिविल नाफरमानी के लिए देश को तैयार रहने का सन्देश दिया। उन्होंने कहा 'देश को सब कष्ट सहने के लिए साहस और धैर्य दोनों का प्रयोग करना चाहिए।'

डॉ. लोहिया के इस भाषण पर अंग्रेजी सरकार ने उन्हें 7 जून, 1940 को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के कार्यालय से गिरफ्तार कर लिया। डॉ. लोहिया की यह दूसरी गिरफ्तारी साल भर के भीतर ही हुई थी। 15 सितम्बर, 1940 को मुम्बई में आयोजित अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की सभा में गांधीजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा– 'जब तक डॉ. राममनोहर लोहिया और जयप्रकाश नारायण जेल में हैं तब तक मैं खामोश नहीं बैठ सकता। उनसे अधिक शूर और सरल आदमी मुझे मालूम नहीं। उन्होंने हिंसा का प्रचार नहीं किया है, बल्कि रामगढ़ के प्रस्ताव का पालन किया है। उनके लिए यह जेल सम्मानदायक है।' लेकिन इन बातों का कोई प्रभाव अंग्रेजी सरकार पर नहीं पड़ा। लोहिया को अंग्रेजों ने नहीं छोड़ा, जयप्रकाशजी भी नहीं छोड़े गये। इसी के साथ सरकार ने आचार्य नरेन्द्रदेव आदि को भी गिरफ्तार कर लिया था।

इसी बीच जापान ने एशिया में अपने हिंसात्मक पंजे बढ़ाकर सुदूरपूर्व के जितने भी राज्य थे उनको हड़पने की कोशिश की। वह सफल भी हो गया। तब अंग्रेजों को भारत से बात–चीत करके कोई रास्ता निकालने के लिए मजबूर होना पड़ा। फलस्वरूप 4 दिसम्बर, 1941 को लोहिया, जयप्रकाश व आचार्य नरेन्द्रदेव आदि रिहा कर दिये गये। मार्च–अप्रैल, 1942 में क्रिप्स मिशन भारत आया किन्तु वार्ता असफल हो गयी। लेकिन इस वार्ता से नेहरूजी की जो पूरी तस्वीर लोहिया के मन में बनी वह अच्छी नहीं थी। इसी बीच अल्मोड़ा के एक सम्मेलन में

नेहरूजी की आलोचना करते हुए लोहिया ने कहा– 'नेहरू झट से पलटने वाले नट हैं।' नेहरूजी को चेतावनी देते हुए उन्होंने कहा कि 'देश को नेहरूजी से बड़ी आशाएं हैं। उन्हें सोच समझकर निर्णय लेना चाहिए।' उस समय नेहरूजी के खिलाफ इतना भी कहने का साहस कांग्रेस के किसी भी सदस्य में नहीं था। बहुत से लोग ऐसे थे जो लोहिया की इन टिप्पणियों से काफी नाराज भी थे। डॉ. लोहिया चाहते थे कि गांधीजी असहयोग आन्दोलन छेंड़ें, साथ ही वह विश्व की सरकारों से यह अपील भी करें कि एक शान्तिपूर्ण विश्व के स्तर पर एक 'विश्व सरकार' को गठित करने का संकल्प लें। वे विश्व नागरिकता से सम्बधित विचारों को मुखर बनाएं। इस सम्बंध में उन्होंने लिखा कि जिन चार तत्त्वों पर एक शान्तिपूर्ण विश्व नागरिकता स्थापित हो सकती है वह इस प्रकार हैं:–

1. हर देश अपने यहां लगी विदेशी पूंजी को जब्त कर ले।

2. किसी भी व्यक्ति को संसार में कहीं भी बसने और आने जाने का अधिकार मिले।

3. दुनियॉ के सारे देशों को राजनैतिक आजादी दी जाये।

4. हर व्यक्ति को जन्म से ही विश्व नागरिक माना जाये।

गांधीजी को डॉ. लोहिया के ये विचार बहुत पसन्द थे लेकिन तत्काल उन पर कार्यवाही करने में वह अपने को असमर्थ पा रहे थे। फिर भी डॉ. लोहिया के इन विचारों को उन्होंने अपने पत्र 'हरिजन' में छापा। उस पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने इसका पूर्ण समर्थन भी किया।

समय तेजी से गुजर रहा था। डॉ. लोहिया कभी–कभी गांधीजी की धीमी गति से बेचैन हो जाते थे। 8 अप्रैल 1942 को उन्होंने 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पर बोलते हुए कहा– 'पिछले कुछ महीनों में ब्रिटिश राज्य के प्रति हिन्दुस्तान की भावना में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया है। घटनाक्रम से यह स्पष्ट हो गया है कि ब्रिटिश राष्ट्र वैसा अजेय राष्ट्र नहीं है जैसा आज तक माना जाता था। फलस्वरूप ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन देशों में भी ब्रिटेन का डर नहीं है। हिन्दुस्तान के बारे में ब्रिटेन ने जो रास्ता अपनाया है उसके कारण उनके खिलाफ भारतीयों में असंतोष दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है।'

नेहरूजी के विचारों की आलोचना करते हुए उन्होंने कहा– 'जो लोग शीघ्र क्रान्ति की बातें करते थे वह आज संयोजित संघर्ष का क्यों विरोध कर रहे हैं।'

डॉ. लोहिया के कुछ उग्र विचारों से निश्चय ही उस समय कांग्रेस का एक वर्ग नाराज हुआ था। पर 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव के पास होने के पश्चात् सरकार की निगाह में सब बराबर हो गये। अंग्रेजों ने प्रायः सभी कांग्रेस नेताओं को गिरफ्तार किया लेकिन लोहिया भूमिगत हो गये। वह भारी तलाश के बावजूद पकड़े नहीं जा सके। 8 अगस्त, 1942 को भूमिगत होने के बाद से लेकर 1946 तक लोहिया का जीवन बड़ा संघर्षपूर्ण रहा। लोहिया चाहते तो जेल जाकर कांग्रेस के अन्य नेताओं की तरह एक आंतकहीन जीवन बिता सकते थे। पर वह उन्हें स्वीकार नहीं था। उनका उद्देश्य था सन् 1942 के आन्दोलन को तेज करके ब्रिटिश साम्राज्यशाही को देश से उखाड़ फैंकने की भूमिका बनाना। उनका लक्ष्य था अंग्रेजों के युद्ध से सम्बन्धित कार्यक्रम को भारत में न चलने देना। गांधीजी ने अपने भाषणों में दो बातें कही थीं– करो या मरो का नारा और दूसरी प्रत्येक नागरिक अपनी तरफ से ब्रिटिश साम्राज्य से संघर्ष करे। गांधीजी के इन दोनों वाक्यों के आधार पर लोहिया स्वतंत्र रूप से स्वतन्त्रता आन्दोलन चलाना चाहते थे। इसीलिए डॉ. लोहिया भूमिगत होने के बाद भी चैन से नहीं बैठे। सन् 1942 के आन्दोलन को डॉ. लोहिया ने आजादी की आखिरी लड़ाई के रूप में स्वीकार किया था। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने भूमिगत होने के बाद ही 'जंगजू आगे बढ़ों', नामक पुस्तक लिखी। अभी यह पुस्तिका बंटी ही थी कि डॉ. लोहिया ने दूसरी तरफ 'मैं आजाद हूं' लिखी। तीसरी पुस्तक लोहिया ने भूमिगत जीवन में 'करो या मरो' लिखी। इन तीनों पुस्तकों से हलचल पैदा हुई। भारतीय जनता में कुछ करने का उत्साह भर चुका था। इन क्रांतिकारी पुस्तकों ने जनता को और प्रेरित किया। 8 अगस्त के बाद कांग्रेस नेताओं के जेल चले जाने से सभी किंकर्त्तव्य–विमूढ़ हो गये थे। लोहिया की इन तीनों पुस्तिकाओं से जनता में फिर से 'करो या मरो' की एक नई चेतना प्रवाहित हो गयी।

कांग्रेस रेडियो का संचालन

इस भूमिगत जीवन में डॉ. लोहिया 'बाढ़ियाजी' के नाम से जाने जाते थे। कलकत्ता की एक धनी बस्ती में जिस मित्र के घर में वे मेहमान के रूप में रहते थे वहां एक बड़े विदेशी सेठ के लड़के के नाम से प्रसिद्ध थे। काफी दिनों तक निहायत ठाट–बाट के साथ डॉ. लोहिया यहीं रहे।

अपने कलकत्ता प्रवास के दौरान डॉ. लोहिया ने दो भूमिगत रेडियो ट्रान्समिशन केन्द्र बनाए जो 'कांग्रेस रेडियो' के नाम से प्रसारण करते थे। वह प्रसारण पूरे देश में लगन के साथ सुने जाते थे। इस भूमिगत रेडियो स्टेशन से जो खबरें प्रसारित होती थीं उनमें कहा जाता था, 'यह कांग्रेस रेडियो है। हम देश के किसी कोने से बोल रहे हैं। आजादी के लिए लड़ने वालों के नाम संदेश सुनिये।' इस सन्देश आलेख को डॉ. लोहिया ही बनाते थे। कभी–कभी तो वह खुद अपनी ही आवाज में संदेश प्रसारित भी करते थे।

काफी दिनों तक यह सिलसिला चलता रहा। फिर सरकार ने इस भूमिगत तंत्र का पता लगा लिया। किसी तरह डॉ. लोहिया पुलिस के चंगुल से निकल भागे। अनेक मुसीबतों को सहते पुलिस की आंखों में धूल झोंकते हुए पूरा ट्रान्समीटर साथ लिए वे नेपाल पहुंचे। वहां जंगलों में उन्होंने उसे फिर लगाया और वहां से कांग्रेस रेडियो' का संदेश प्रसारित करने लगे। सरकार जब हर तरह से लोहिया को कैद करने में असफल रही तो उसने लोहिया की गिरफ्तारी पर हजारों रूपये का पुरस्कार घोषित कर दिया। फिर भी पुलिस उन्हें पकड़ने में असफल रही।

हजारीबाग की जेल से भागकर जयप्रकाशनारायण पहले से ही नेपाल पहुंच चुके थे। जयप्रकाश वहां 'आजाद दस्ता' के नाम से आन्दोलन चला रहे थे। लोहिया के पहुंच जाने से आजाद दस्ता आन्दोलन ज्यादा संगठित रूप से चलने लगा। अंग्रेजी सरकार का खुफिया विभाग टोह लगाते–लगाते नेपाल भी पहुंच गया। खुफिया विभाग ने नेपाल पुलिस की सहायता ली ओर लोहिया और जयप्रकाश को पकड़ने की योजना बनाने लगी। उन दिनों यह लोग बराह के पहाड़ी टीले पर रहते थे। इनके साथ अच्युत पटवर्धन की बेटी विजया भी रहती थी। नेपाल पुलिस ने इन सबको एक दिन छापा मार कर पकड़ लिया और हनुमाननगर की जेल मतें बंद कर दिया। यह खबर पाकर 'आजाद दस्ता' के मुख्य संचालक सूरज नारायणसिंह ने हनुमाननगर की जेल पर हमला कर दिया। वहां से यह लोग किसी तरह भागे। रास्ते में लोहिया का चश्मा टूट गया और वह घायल भी हो गये। कुछ लोगों ने उन्हें घोड़े पर बैठाया और अज्ञात स्थान को ले जाने में सफल हो गये। जयप्रकाशजी को तो कुछ लोगों ने अपनी पीठ पर बैठा लिया और जंगल के बीच से भागते हुए बच निकले। रास्ते में यह लोग फिर पुलिस द्वारा

घेर लिये गये। दुबारा फिर घिर जाने पर लोहिया को किसी घर में छिपा दिया गया। उनका नाम हरिठाकुर नाथ रखा गया पुलिस ने काफी छानबीन की। अन्त में हताश होकर पुलिस वापस लौट गयी। मझारी घाट पर पहुंचने पर फिर पुलिस ने इन लोगों को घेरा, लेकिन सूरजसिंहनारायणसिंह की कुशलता से यह लोग फिर पुलिस के चंगुल से बच निकले। किसी तरह यह लोग राधापुर पहुंचे। लोहिया राधापुर से फिर कलकत्ता के लिए रवाना हो गये।

इस बीच देश में पूरा आन्दोलन ठप्प पड़ गया। गांधीजी की धर्म पत्नी कस्तूरबा गांधी की मृत्यु हो चुकी थी। महादेव भाई का भी निधन हो चुका था। गांधीजी के 21 दिन के उपवास का भी कोई असर नहीं दिखता था। जो लोग भूमिगत जीवन बिता रहे थे उनके सामने एक बहुत बड़ी समस्या थी कि इस निराशा की हालत से देश को कैसे निकाला जाये। बहुत प्रयास करने के बाद ऐसी स्थिति पैदा की जा सकी कि सारे भूमिगत लोग मुम्बई में मिलें और आगे के कार्यक्रम पर विचार विनिमय करें। लोहिया भी कलकत्ता से मुम्बई पहुंचे। 20 मई, 1944 का दिन था। भूमिगत लोगों की बैठक चल रही थी। खबर मिली कि बैठक स्थल को पुलिस ने घेर रखा है। कुछ लोग तो भाग निकले लेकिन लोहिया वहां से निकल नहीं सके और पकड़ लिये गये। पुलिस ने उनके हाथों में हथकड़ी लगा दी। उसी हालत में पुलिस उन्हें लाहौर जेल ले गयी। लाहौर जेल में लोहिया को बड़ी कठोर यातनाएं दी गयीं। ब्रिटिश सरकार की क्रूरतम मानी जाने वाली जेलों में से लाहौर जेल का नाम सर्वोपरि था।

डॉ. लोहिया ने 'इण्टरवल ड्यूरिंग पालिटिक्स' नामक पुस्तक में इस यातना का बड़ा विषद वर्णन किया है। वहां उन्हें सबसे अधिक अमानवीय पद्धतियों की क्रूरतम यातनाएं दी गयीं। लोहिया को कई दिनों तक सोने नहीं दिया गया और लगातार उन्हें बैठा रहना पड़ा। जहां जरा सी झपक आती थी, पास खड़े सिपाही उनको जगा देते थे। डॉ. लोहिया ने इसे एक प्रकार के हठयोग के दौर से गुजरना बताया है। किन्तु हठयोग में जो भी यातनाएं शरीर को दी जाती हैं वह योगी अपनी स्वेच्छा से स्वीकार करके देता है। नाजी यातना शिविरों की दर्दनाक यातना कथाएं तो हमें युद्ध के बाद मालूम हुई। लाहौर जेल की यातनाएं उन शिविरों में दी जाने वाली यातनाओं से कम नहीं थी।

लाहौर जेल से ही डॉ. लोहिया ने एक सारगर्भित पत्र इंग्लैण्ड के प्रख्यात समाजवादी बुद्धिजीवी प्रो. लास्की को लिखा। पत्र में इन

अमानुषिक यातनाओं का हवाला भी दिया गया था। वह पत्र डॉ. लास्की को मिला जरूर होगा पर उस समय उस पत्र की उनके ऊपर क्या प्रतिकिया हुई, कहना कठिन है।

डॉ. लोहिया की यातनाओं की खबरें छुटपुट रूप से उस समय देश–विदेश के अखबारों में छपीं। उन्हें पढ़कर काफी तहलका भी मचा। लेकिन उसका कोई प्रभाव यातना की शैली और उसके रूप पर नहीं पड़ा। यह प्रवृत्ति ऐसे ही चलती रही। साम्राज्यवादी दृष्टि से उपनिवेशों के प्रति एक खास किस्म की मानसिकता काम करती थी, जिसमें कैदी या अपराधी को मनुष्य समझने की क्षमता नष्ट हो चुकी थी। जनमत के विरोध का भी उस पर प्रभाव नहीं पड़ता था।

सन् 1945 में लोहियाजी ने हाई कोर्ट में 'हेबियस कार्पस' के अन्तर्गत अपनी गिरफ्तारी के विरूद्ध मामला दायर किया। मामले की सुनवाई के लिए उन्हें लाहौर जेल से आगरा जेल भेज दिया गया। लाहौर जेल की यातनाओं से डॉ. लोहिया को मुक्ति तो मिल गई, लेकिन तब तक उनका स्वास्थ्य काफी गिर चुका था। वह मन से दृढ़–प्रतिज्ञ थे पर शरीर जर्जर हो गया था। इस गिरे हुए स्वास्थ्य के कारण वह काफी परेशान थे लेकिन वह इस हालत में भी पैरोल पर छूटना नहीं चाहते थे। इसी बीच देश की राजनैतिक स्थितियों ने एक करवट ली।

पिता का स्वर्गवास

उधर उनके पिता श्री हीरालाल गंभीर रूप से बीमार हो गये। जेल में पिता की बीमारी की खबर मिलने पर भी लोहियाजी ने झुकना स्वीकार नहीं किया। सन् 1945 में अचानक ब्रिटिश सरकार ने 1942 के बंदियों की आम रिहाई का आदेश दिया। लोगों को यह आशा थी कि इस आम रिहाई के अन्तर्गत डॉ. लोहिया भी जेल से छोड़ दिये जायेंगे। लेकिन डॉ. लोहिया को उस समय भी नहीं रिहा किया गया। ब्रिटिश शासन ने लोहिया को भारत का सबसे ज्यादा खतरनाक व्यक्ति माना था।

इसी बीच डॉ. लोहिया के पिता श्री हीरालाल बीमारी की हालत मे अपने पुत्र डॉ. लोहिया से मिलने आगरा जेल गये। अपने पिता की हालत देखकर उनको काफी चिन्ता हुई। पिता ने पुत्र को साहस और धैर्य तो दिया पर चलते हुए यह भी कहा कि यह उनकी उनसे आखिरी

भेंट है। आगरा से वापस जाने के थोड़े ही दिन बाद हीरालाल का स्वास्थ्य और भी खराब हो गया। ब्रिटिश सरकार ने मरणासन्न पिता से मिलने के लिए डॉ. लोहिया को पैरोल पर छोड़ने का फैसला किया। डॉ. लोहिया ने सरकार के इस फैसले को स्वीकार नहीं किया। उन्हें जेल में सूचना मिली की पिता की मृत्यु हो गई है। सरकार ने फिर जेल से पैरोल पर जाने का आदेश जारी किया। परन्तु डॉ. लोहिया ने उसे भी ठुकरा दिया। पिता का क्रियाकर्म खानदान की ओर से लोगों ने पूरा किया। डॉ. लोहिया अपने पिता के अन्तिम दर्शन भी नहीं कर पाये। पिता की मृत्यु के बाद डॉ. लोहिया के परिवार में कोई नहीं बचा। सारा देश ही डॉ. लोहिया के लिए परिवार सा हो गया। अकेलेपन की इस पीड़ा को वह आजीवन झेलते रहे।

देश स्वाधीन हुआ किन्तु विभाजन के बाद 'पाकिस्तान' बनने के साथ ही उसे स्वाधीनता प्राप्त हुई। डॉ. लोहिया देश के विभाजन के विरूद्ध थे परन्तु वे कर क्या सकते थे। समय–समय पर वे भारत–पाकिस्तान के एकीकरण की कामना व्यक्त करते रहे।

कांग्रेस सरकार की गलत नीतियों ने डॉ. लोहिया को झकझोर डाला। वे सभी गैर कांग्रेसी दलों के समान कार्यक्रम को लेकर एकजुट होने के समर्थक रहे। 'राजनीतिक छुआछूत' को वे घातक व जनतंत्र विरोधी मानते थे।

अपनी इसी सोच के अन्तर्गत उन्होंने सन् 1963 में हुए लोकसभा के उपचुनाव में जौनपुर क्षेत्र के जनसंघ प्रत्याशी पंडित दीनदयाल उपाध्याय तथा अमरोहा से खड़े हुए आचार्य जे.बी. कृपलानी का समर्थन कर नया आदर्श उपस्थित किया। प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के संकीर्ण गुट ने डॉ. लोहिया के इस कदम पर न केवल क्षोभ व्यक्त किया अपितु जब डॉ. लोहिया फरूखाबाद से लोकसभा के लिए खड़े हुए तो प्रजा समाजवादी पार्टी ने उनके विरूद्ध अपना प्रत्याशी खड़ा कर दिया। डॉ. लोहिया अपने क्षेत्र में तो प्रचार में लगे रहे लेकिन अमरोहा और जौनपुर में भी वह चुनाव प्रचार में जाते रहे। लोहिया ने फरूखाबाद से कांग्रेस और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के प्रत्याशियों को बुरी तरह से हराया। लोहिया को एक लाख सात हजार आठ सौ सोलह मत मिले। कांग्रेसी प्रत्याशी पूर्व केन्द्रिय मंत्री डॉ. केसकर लगभव सत्तावन हजार मतों से पराजित हुए। इस प्रकार वह एक ओर तो 1963 में संसद के सदस्य हो

गयी, दूसरी ओर उनका गैर कांग्रेसवाद का सिद्धान्त भी उभरकर सामने आया। डॉ. लोहिया को लगा कि यदि तमाम विरोधी पार्टियां तालमेल करके, न्यूनतम कार्यक्रम पर समझौता करके चुनाव लड़ें तो कांग्रेस को निश्चय ही हराया जा सकता है। गैर कांग्रेसवाद का बीजारोपण लोहिया के मन में यहीं से प्रारम्भ हुआ।

लेकिन इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण था लोहिया का संसद में प्रवेश करना। लोहिया ने संसद में पहुंचकर अकेले अपने दम पर भारतीय संसद का चरित्र बदल दिया। लोग समझते थे कि डॉ. लोहिया के संसद में पहुंच जाने से संसद के काम में रोड़े ज्यादा अटकेंगे और काम कम होगा, लेकिन अपने अल्पकालिन संसदीय जीवन में लोहिया ने रचनात्मक बहसों और तर्कों से संसद का ही नहीं पूरे देश का मन मोह लिया। भारतीय संसदीय जीवन के 15 वर्षों में पहली बार संसद में सरकार के विरूद्ध 21 अगस्त, 1963 को अविश्वास का प्रस्ताव रखा गया। प्रस्ताव केवल एक वाक्य का था 'यह संसद मंत्रि–परिषद के प्रति अविश्वास प्रकट करती है?' इस अविश्वास प्रस्ताव पर बोलते हुए लोहिया ने सरकार की बखिया उधेड़ दी। उन्होंने कहा '60 प्रतिशत कुटुम्ब 25 रूपये माह यानि 26 करोड़ आदमी तीन आने रोज पर अपना जीवन निर्वाह करते हैं जबकि प्रधानमंत्री के कुत्ते पर तीन रूपये रोज खर्च होते हैं।' उन्होंने कहा– खेत मजदूर 12 आने रोज कमाता है और प्रधानमंत्री के ऊपर 25 हजार रूपये प्रतिदिन खर्च होते हैं।'

डॉ. लोहिया ने जब इन आंकड़ों को संसद में प्रस्तुत किया तो सन्नाटा छा गया। डॉ. लोहिया की तीन आने रोज आमदनी वाली बात पर पूरे देश में खलबली मच गयी। प्रधानमंत्री नेहरूजी ने लोहिया के आंकड़ों को गलत बताया तो लोहिया ने चुनौती दे दी कि यदि उनके आंकड़े गलत साबित हो जायें तो वह राजनीति से संन्यास ले लेंगे अन्यथा प्रधानमंत्री को त्याग–पत्र देना होगा। लोकसभा में इस विषय पर एक सप्ताह तक बहस चली, लेकिन अन्त में लोहिया की विजय हुई।

सन् 1962 में चीन ने भारत पर हमला कर काफी भू–भाग हड़प लिया था। लोहियाजी इस हमले से उद्विग्न हो उठे थे। उन्होंने लोकसभा में कहा था 'चीन ने हमारे देश पर हमला कर हमारी जमीन पर कब्जा किया हुआ है फिर भी भारत राष्ट्र संघ में चीन की सदस्यता के लिए पैरवी करता है। कोई लाडला अपनी मां के बलात्कारी के साथ अपनी मां

का विवाह करवाने की इच्छा करे, यह बेशर्मी की बात है।' लोहिया की इस तर्क संगत आलोचना ने पूरी संसद को हिला दिया था। लोहिया ने समय–समय पर लोकसभा में सरकार की दामनीति, पंचवर्षीय योजना आदि नीतियों की बखिया उधेड़ दी। गुलजारीलाल नन्दा ने जो उस समय योजना मंत्री थे, डॉ. लोहिया की बहस का जवाब देना शुरू किया, लेकिन लोहिया ने नन्दा की बहस का उत्तर देते हुए कहा– 'उत्तर प्रदेश जैसे गरीब प्रदेश का यह दुर्भाग्य है कि मुझ जैसा निकम्मा आदमी और प्रधानमंत्री जैसा अज्ञानी आदमी इस प्रदेश का प्रतिनिधित्व यहां करते हैं।'

पहले दिन से लेकर जीवनपर्यन्त जब तक डॉ. लोहिया संसद में रहे वह संसदीय प्रणाली के जितने भी नियम कायदे थे उनके अन्तर्गत सरकार को निरन्तर कटघरे में खड़ा करते रहे। लोहिया ने संसद में कई अमूल्य बाते कहीं। जब उनकी बहस की आलोचना करते हुए उनके ऊपर दोषारोपण लगाया गया कि संसद में वह ऐसी बातें कहते हैं जिनसे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत का सिर नीचा होता है तो लोहिया ने कहा– तथ्यों तथा वास्तविकता के सबक सामने आने से राष्ट्र का मानस साफ–साफ चित्रित हो।' इन्हीं संसदीय बहसों में जन आन्दोलन के समर्थन में बोलते हुए उन्होंने कहा– 'जब बाहर की राजनीति और आन्दोलन तीव्र हो जाते हैं तब संसद का चरित्र भी प्रखर होता है और जब संसद के बाहर की राजनीति और आन्दोलन ठण्डे पड़ जाते हैं तब संसद का रूप निर्जीव होता है।'

इन्हीं संसदीय बहसों में सरकार और जनता के रिश्तों पर चर्चा करते हुए डॉ0. लोहिया ने कहा– मतदाता को चाहिए कि वह 'तवे के ऊपर जैसे रोटी उलटी पुलटी जाती है इसी तरह सरकारों को भी उलटता–पुलटता रहे ताकि वह यथास्थितिवादी न हो।' उन्होंने यह भी कहा– 'जिन्दा कौमे पांच साल तक खामोश नहीं बैठतीं। वह या तो सरकारों को शुद्ध करती हैं या उन्हें हटाती हैं।'

लोकसभा की परिभाषा करते हुए उन्होंने कहा 'जनतंत्र का मतलब है लोकसभा, लोकसभा का अर्थ है बहस और तर्क। बहस का अर्थ है सच्चाई यानी जिस तरह तोलते समय बांटों का वजन बदलना अपराध है उसी तरह तर्क के अर्थ को अपनी सुविधा के अनुसार बदलना, स्वीकार करना, झुठलाना भी अपराध मानना चाहिए। जहां सच नहीं है वहां बहस नहीं हो सकती। जहां बहस नहीं है वहां लोकसभा नहीं है। जहां

लोकसभा नहीं है वहां प्रजातंत्र नहीं हो सकता।'

इसी प्रकार लोहिया ने लोकसभा की प्रक्रिया और कार्यविधि पर भी कई महत्त्वपूर्ण बातें कहीं। उन्होंने कहा– जनतंत्र के लिए आज्ञाकारिता भी खतरनाक है और अवज्ञा भी। आज देश में जहां अवज्ञा है वहां आज्ञाकारिता बढ़ गई और जहां आज्ञाकारिता है वहां अवज्ञा। कानून में मात्रा भेद आवश्यक है।

लोकसभा के अध्यक्ष की वास्तविक स्थिति और उसके दायित्व पर बोलते हुए कहा– जिस एक अंग्रेजी शब्द ने हमारा बड़ा नुकसान किया है और वह है सैक्यूलरिज्म। सैक्यूलरिज्म का अर्थ बहुत कम लोग जानते हैं। धर्मनिरपेक्ष जिसे कहते हैं वह तो इसका बड़ा छोटा सा अर्थ है। सैक्यूलरिज्म का अर्थ है इहलोकवादी।

भारत की विदेश नीति पर बोलते हुए उन्होंने कहा था– भारत सरकार शरीर के हिसाब से अमरीका की हो गयी है और मन के हिसाब से रूस की। जब शरीर और मन अलग–अलग हो जाया करते हैं तो शरीर ज्यादा महत्त्वपूर्ण रहता है। भारत सरकार को आत्म सम्मान के साथ अपनी एक नीति ऐसी बनानी चाहिए जो अपने राष्ट्र तथा यहां की जनता के हितों को सर्वोपरि महत्त्व देती हो।

'व्यवस्था को बदल डालो'

डॉ. लोहिया कांग्रेस सरकार की अदूरदर्शितापूर्ण नीति के कारण देश को विनाश के गर्त में जाते देखकर दुखित हो उठते थे। उन्होंने एक बार कहा था– 'इस व्यवस्था को बदलो, वरना देश जहन्नुम में चला जायेगा। सत्ता का विकेन्द्रीकरण करो, चौखम्भा राज की स्थापना करो, तभी देश का निर्माण किया जा सकता है। तभी भूखे को खाना, बेकार को काम, खेत को पानी, अनपढ़ को शिक्षा और पिछड़े, दबे, कुचले, उदास मन को नई जिन्दगी का संदेश मिल सकता है, जिससे वे उठें, बढ़ें, और मुल्क को इसकी आत्मा को तथा देश के आत्मसम्मान को बचा सकें।' स्वाधीनता के बाद भी देश में अंग्रेजी भाषा का दबदबा लादे रखने के डॉ. लोहिया सख्त विरोधी थे। उन्होंने समय–समय पर हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं को महत्त्व दिये जाने की मांग की थी। उन्होंने डॉ. रघुवीर के साथ मिलकर 'अंग्रेजी हटाओ' अभियान चलाने तथा राष्ट्रभाषा पद पर हिन्दी को प्रतिष्ठित किये जाने की भी मांग की थी।

भारतीयता के उपासक

डॉ. लोहिया भारतीय संस्कृति के प्रति अनन्य निष्ठावान रहे। रामायण, महाभारत, वेद–उपनिषद तथा अन्य भारतीय धर्मशास्त्रों को वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानते थे। वे इतिहास, दर्शन, साहित्य तथा धर्म के अध्येता थे। उन्होंने भारतीय शिल्पकला, मूर्तिकला, संगीत, खण्डहरों तथा प्राचीन चित्रों का गहन अध्ययन करने के बाद लिखा था– 'इन सबसे हमें अपने महान अतीत का पता चलता है।'

डॉ. लोहिया 'रामचरित मानस' को भारतीय समाज तथा संस्कृति का प्रतिबिम्ब मानते थे। इसीलिए उन्होंने चित्रकूट में 'रामायण मेला' का शुभारम्भ कराया था। भगवान श्रीराम, कृष्ण और शिव के बारे में उनके लिखे लेख उनके अध्यात्म प्रेम को स्पष्ट करते हैं।

डॉ. लोहिया गाय तथा गोवंश को भारतीय अर्थव्यवस्था का मेरूदंड मानते थे। इसीलिए उन्होंने 1967 में चले गौरक्षा आन्दोलन का समर्थन किया था। वे वृन्दावन में अनशन कर रहे संत प्रभुदत्त ब्रह्मचारी से मिलने वृन्दावन भी गये थे।

साहित्य प्रणेता

डॉ. लोहिया ने सौ से ज्यादा पुस्तकें लिखकर हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि में योगदान किया था। उनके द्वारा लिखित 'धर्म पर एक दृष्टि', वशिष्ठ और बाल्मीकि', 'कृष्ण', 'सावित्री और द्रौपदी', 'राम, कृष्ण और शिव', 'सगुण और निर्गुण', 'हिन्दू बनाम हिन्दू', 'सच', 'कर्म', 'प्रतिकार और चरित्र निर्माण', 'रामायण मेला', 'भारत विभाजन के गुनहगार', 'मार्क्स, गांधी और समाजवाद', 'विदेश नीति', 'नया समाज – नया मन', 'पच्चीस हजार रूपये रोज', 'विनाश क्यों और कैसे' आदि पुस्तकें बहुत लोकप्रिय हुई हैं। डॉ. लोहिया समाजवादी चिन्तक थे किन्तु मार्क्सवाद को वे अपूर्ण तथा त्रुटिपूर्ण मानते थे। उन्होंने 'मार्क्स के बाद अर्थशास्त्र' पुस्तक लिखकर मार्क्स के विचारों पर खुला प्रहार किया तथा लिखा था मार्क्स के विचारों का अन्धानुकरण करके भारत का हित कदापि नहीं हो सकता।' उनके इस ग्रन्थ से साम्यवादी बौखला उठे थे।

डॉ. लोहिया ने अनेक बार अग्रवाल समाज का आह्वान किया था कि वह गरीबों व पिछड़े वर्ग की सेवा–सहायता के लिए और तेजी से सकिय हो। सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध भी वे समय–समय पर

आवाज उठाते रहते थे।

1967 के आम चुनाव में डॉ. लोहिया के चुनाव क्षेत्र में कुछ परिवर्तन कर दिया गया था। डॉ. लोहिया उन दिनों हिन्दू, मुसलमान दोनों के लिए एक सिविल कानून के पक्षधर थे। अपने सिद्धान्त के अनुसार 1967 के लोकसभा के चुनाव के प्रचार के दौरान डॉ. लोहिया ने मुस्लिम पर्सनल ला की कटु आलोचना की। नतीजा हुआ कि उनके चुनाव क्षेत्र के मुस्लिम मत उनसे कट गये और बमुश्किल उन्हें लगभग चार सौ मतों से जीत मिली। इसका लोहिया को बड़ा दुःख था क्योंकि 1967 के चुनाव में मुस्लिम पर्सनल लॉ के अतिरिक्त दूसरा बड़ा मुद्दा था 'गैर–कांग्रेसवाद'। इतने कम मत मिलने का दुःख तो डॉ. लोहिया को था ही साथ ही वह दुःखी इस बात से भी थे कि गैर–कांग्रेसवाद का जो सिद्धान्त उन्होंने बनाया था उसका वांछित नतीजा नहीं निकला। प्रदेशों में तो वह नीति कुछ सफल रही पर केन्द्र में उसका उतना अच्छा नतीजा नहीं निकला। यद्यपि इस गैर–कांग्रेसवाद सिद्धान्त को लेकर डॉ. लोहिया ने पूरे देश का भ्रमण किया था। लेकिन वांछित नतीजा न मिलने से वह दुःखी थे। रक्तचाप की बीमारी थी ही। साथ में उन्हें पौरूष ग्रन्थि की भी बीमारी थी। तकलीफ बढ़ने पर उसके आपरेशन की बात आई। लोगों ने विदेश में जाकर आपरेशन कराने का सुझाव दिया। लोहियाजी ने किसी की बात नहीं मानी। उनका कहना था कि जब तक इस देश के बड़े लोग भारत के अस्पतालों में अपना उपचार नहीं करायेंगे यहां के अस्पतालों की हालत नहीं सुधरेगी। हर मंत्री अपने और अपने परिवार वालों के आपरेशन और इलाज के लिए विदेश में जाता है। लोहिया इसकी आलोचना करते थे। जब उन्हें इलाज के लिए ब्रिटेन भेजे जाने की बात आई तो वह अड़ गये। नई दिल्ली के विलिंग्डन अस्पताल में उन्होंने आपरेशन कराया और वहीं दस दिनों की लम्बी बीमारी के बाद 12 अक्टूबर 1967 को वे चल बसे। विलिंग्डन अस्पताल का नाम ही आगे चलकर उनके नाम पर डॉ. राममनोहर लोहिया अस्पताल किया गया।

✦✦✦

लेखक परिचय

सत्यवीर अग्रवाल

जन्म 20 जून, 1940 को मीरापुर (मुजफ्फरनगर) में साधारण कपड़ा व्यापारी श्री रामकिशन के यहाँ हुआ। शिक्षा मीरापुर में हुई। युवावस्था से ही समाजवादी आन्दोलन में सक्रिय रहे और डॉ. राम मनोहर लोहिया के निकट रहकर समाजवादी आन्दोलन में भाग लिया। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में समाजवादी आन्दोलन के सूत्रधार रहे और विभिन्न आन्दोलनों में दो दर्जन से अधिक बार जेल गये। आपातकाल में लम्बे अरसे तक बन्दी रहे। दस वर्ष तक सोशलिस्ट पार्टी व संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के जिला अध्यक्ष और अनेक वर्षों तक पश्चिमी उत्तर प्रदेश संसोपा के प्रभारी रहे। सन् 1977 में जनता पार्टी के जिला अध्यक्ष रहे।

सन् 1964 में साप्ताहिक पत्र 'कल हमारा है' का प्रकाशन–सम्पादन प्रारम्भ किया। इस पत्र के माध्यम से डॉ. लोहिया व समाजवादी आन्दोलन की विचारधारा को जन–जन तक पहुँचाया। महाराजा अग्रसेन, अग्रोहा व अग्रवाल समाज पर सैंकड़ों लेख विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। एक कुशल वक्ता व लेखक के रूप में देशभर में प्रतिष्ठित।

पिछले कई वर्षों से जनपद मुजफ्फरनगर की अग्रणी संस्था 'वैश्य सभा' के अध्यक्ष व पूर्व में अखिल भारतीय अग्रवाल सम्मेलन के पश्चिमी उत्तर प्रदेश के प्रभारी रहे हैं।

सम्पर्क सूत्र : 54/3, रामबाग रोड, मुजफ्फरनगर–2510 01